

आध्यात्मिक होली

सम्पादक

प्रो. वीरसागर जैन

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ

नई दिल्ली - 110016

ईमेल - veersagarjain@gmail.com

दूरभाष - 011-26177207, 09868888607

© सम्पादक

प्रथम संस्करण : 2016

मूल्य : 10/- ₹

मुद्रक:

नील एडवर्टाईजिंग, दिल्ली - 9

मो. 8802451208

प्रस्तावना

भारत एक धर्मप्रधान देश है। यहाँ की प्रत्येक क्रिया में तिल में तेल की भाँति कूट-कूट कर धर्मभावना भरी हुई होती है। इसीलिए कहते भी हैं कि यहाँ का कंकर-कंकर शंकर है।

इसी धर्मभावना के उत्तरोत्तर विकास हेतु हमारे देश में अनेकानेक पर्वों, उत्सवों या त्यौहारों का प्रणयन किया गया है। ये पर्व, उत्सव या त्यौहार इतने अधिक हैं कि कहावत ही बन गई है— ‘सात वार नौ त्यौहार’ अर्थात् एक सप्ताह में वार तो सात ही होते हैं, पर त्यौहार कभी-कभी नौ तक भी हो जाते हैं।

जो भी हो, पर ये सभी त्यौहार धर्मभावना की वृद्धि हेतु ही बनाये गये हैं और उसी के लिए आज तक चलाये भी जा रहे हैं।

होली भी एक भारतीय पर्व है, अतः उसे भी धार्मिक भावना से भरपूर ही होना चाहिए। उसके द्वारा व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र सभी का हित/ कल्याण होना चाहिए। किन्तु खेद होता है कि कुछ लोग उसके द्वारा कलह, अश्लीलता, प्रदूषण आदि पापकार्यों की वृद्धि करते हैं। वे होली के नाम पर धर्मानुष्ठान तो दूर, पापानुष्ठानों का ही विशेष सेवन करते हैं।

आश्चर्य तो इस बात से होता है कि वे इस अवसर पर किये जाने वाले अपने पापानुष्ठानों को इस त्यौहार का प्रयोजन ही बताते हैं और अन्य भी अनेक तरह से उनका औचित्य सिद्ध करने लगते हैं।

किन्तु भारतीय साहित्य के अध्ययन से यह बात भलीभाँति स्पष्ट है कि होली किसी भी तरह से पापानुष्ठान नहीं, अपितु भारतीय संस्कृति के अनुरूप एक धार्मिक-आध्यात्मिक पर्व ही है और हमारे सभी प्राचीन ज्ञानी पुरुष उसे धार्मिक-आध्यात्मिक रूप में ही मनाते रहे

हैं। अतः हमें भी इसे मनाने का ऐसा ही कोई उत्तम तरीका अपनाना चाहिए।

यदि कोई व्यक्ति होली के नाम पर कलह, अश्लीलता, प्रदूषण आदि फैलाता है तो वह अपना और राष्ट्र का भी महान् अहित करता है। ऐसे ही लोगों के कार्यों से होली को कुपर्व तक कह दिया गया है। अतः हम सबको उत्तम प्रकार से ही होली को मनाना चाहिए।

प्रस्तुत कृति में होली से सम्बन्धित सैकड़ों-हजारों आध्यात्मिक पदों में से कुछेक को ही चुनकर प्रस्तुत किया है, परन्तु हम समझते हैं कि इनसे हमारी भारतीय संस्कृति की मूल भावना पूर्णतः स्पष्ट हो रही है। अब्बल उस्ताद को इशारा ही काफी होता है।

यहाँ जिस प्रकार होली के सम्बन्ध में कहा गया है, उसी प्रकार दिवाली आदि अन्य त्यौहारों के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

—वीरसागर जैन

भारतीय संस्कृति में प्रतीकों की भरमार है। लगता है कि होली का भी एक प्रतीकात्मक अर्थ होना चाहिए, जो इस प्रकार हो सकता है कि दुःख, चिन्ता, शोक, भय, अहंकार आदि को जलाकर खाक कर दो और फिर जीवन के सभी रंगों में आनन्द का सुन्दर रंग अनुभव करो। कोई कभी दुःखी मत होओ और सभी सदा प्रसन्न रहो - यही पूरी भारतीय संस्कृति का मूल सन्देश है।

—ज्ञानविज्ञानरत्नाकर

अनुक्रम

1. चेतन ऐसे खेले....	द्यानतराय	7
2. पिया बिन कैसे खेलूँ....	द्यानतराय	8
3. होरी हो रही...	द्यानतराय	8
4. खेलौंगी होली.....	द्यानतराय	9
5. भली भई यह होली.....	द्यानतराय	9
6. होरी खेलौंगी.....	भूधरदास	10
7. ज्ञानी ऐसे होली....	दौलतराम	11
8. मेरो मन खेलत....	दौलतराम	12
9. निजपुर में आज मची....	बुधजन	13
10. श्री जिनवर दरबार.....	बुधजन	13
11. चेतन तोसैं आज.....	बुधजन	14
12. अब घर आये....	बुधजन	15
13. और सबै मिलि....	बुधजन	16
14. कहा बानि परी....	मानिक	17
15. जामें आवागमनवा की....	मानिक	18
16. जे सहज होरी....	भागचन्द	19
17. कैसे होरी खेलूँ....	जगतराम	20
18. कैसी होरी मचाई....	जगतराम	21
19. यह समक् समय....	जगतराम	22
20. होरी को ख्याल मच्यो....	जगतराम	23
21. ऐसी नीकी होरी.....	—	24
22. खेल ले ऐसी होरी....	—	25
23. होली खेलें मुनिराज....	—	26
24. होली खेलें मुनिराज....	—	27
25. आज जादुपति खेले.....	—	28
26. केशरिया के द्वार....	—	28
27. ऐसी होरी खेलन....	—	29
28. ऐसे होरी खेलो....	—	29
29. अध्यातम फाग	बनारसीदास	30
30. भेदविज्ञान है होली....	वीरसागर	32

सुपर्व और कुपर्व

अच्छे पर्वों की प्रशंसा—

“सो जयदु जेण विहिआ संवच्छरचाउमासिय सुपव्वा।
णिंदधयाण वि जायइ जस्स पहावो धम्ममई॥”

— उपदेशसिद्धांतरत्नमाला, 26

अर्थ— वे महापुरुष जयवन्त हों जिन्होंने सांवत्सरिक, चातुर्मास आदि धर्म के सुपर्वों का विधान किया, क्योंकि उनके प्रभाव से निन्दनीय पुरुष भी धर्मबुद्धि हो जाते हैं।

बुरे पर्वों की निन्दा—

“णामं पि तस्स असुहं जेण णिदिदट्ठाइ मिच्छपव्वाइ।
जेसिं अणुसंगाओ धम्मीण वि होई पावमई॥”

— वही, गाथा 27

अर्थ— उनका तो नाम लेना भी अशुभ है, जिन्होंने मिथ्या पर्वों की स्थापना की, क्योंकि उनमें अनेक धर्मात्मा भी पापबुद्धि हो जाते हैं।

एक विशेष बात—

“अइसय पावी जीवा धम्मियपव्वेसु ते वि पापरया।
ण चलंति सुद्ध धम्मा धण्णा कि वि पावपव्वेसु॥”

— वही, गाथा 29

अर्थ— जो अत्यन्त पापी जीव हैं वे धार्मिक पर्वों में भी पाप में लीन रहते हैं और जो शुद्ध धर्मात्मा जीव हैं वे किसी पाप पर्व में भी धर्म से चलित नहीं होते हैं।

(1)

चेतन ऐसे खेले होरी॥ टेक॥

सत्ता भूमि क्षमा बसन्त में, समता प्राण प्रिया संग गोरी॥
मन को कलश प्रेम को पानी, तामें करुना केशर घोरी।
ज्ञान ध्यान पिचकारी भरि भरि, आपमें छारे होरा होरी॥
गुरु के वचन मृदंग बजत, नय दोनों डफ ताल टकोरी।
संयम अतर विमल व्रत चोबा, भाव गुलाल भरै भर झोरी॥
धर्म मिठाई तप बहु मेवा, समरस आनन्द अमल कटोरी।
'द्यानत' सुमति कहै सखियन सौ, चिरजीवो यह जुग जुग जोरी॥

आत्मा इस प्रकार होली खेलता है। सत्ता रूपी भूमि है, क्षमा रूपी वसन्त ऋतु है और समता रूपी प्राणप्रिया गोरी का साथ है। मन का कलश है और प्रेम का पानी है, जिसमें करुणारूपी केशर घोली गई है। ज्ञान-ध्यान की पिचकारी भर-भरकर आत्मा छोड़ रहा है और होली हो रही है। गुरु के वचन रूपी मृदंग बज रहे हैं, दोनों नयों की डफताल बज रही है, संयम रूपी इत्र है, निर्मल व्रतों का चोबा है और अच्छे भावों की गुलाल से झोली भरी है। धर्म रूपी मिठाई है जिसमें तप रूपी बहुत मेवा है। समता रूपी आनन्द रस की कटोरी भरी है।

कवि द्यानतराय कहते हैं कि सुमति अपनी सखियों से कहती है कि ऐसी यह होली जुग-जुग जीओ।

(7)

(2)

पिया बिन कैसे खेलूँ होरी॥टेक॥
आतमराम पिया नहिं आये, मोकूँ कैसी होरी॥1॥
एक बार प्रीतम संग खेलैं, समकित केसर घोरी।
‘द्यानत’ वो समयो कब पाऊँ, सुमति कहै कर जोरी॥2॥

सुमति रूपी स्त्री हाथ जोड़कर कहती है कि अरे, मैं अपने पति आतमराम के बिना होली कैसे खेलूँ? मेरे पति आतमराम अभी मेरे पास आये ही नहीं हैं, मुझे होली का क्या अर्थ है? मैं तो उस धन्य अवसर की प्रतीक्षा कर रही हूँ जब मैं एक बार सम्यक्त्व रूपी केसर घोलकर अपने पति के साथ होली खेलूँगी।

(3)

[राग-जंगला]

होरी हो रही हो नगर में ॥टेर॥
मेरे पिया चेतन घर नाहीं, मोकूँ होरी को॥1॥
सोति कुमति संग राच रह्यो है, किहि विधि ल्यावत सो॥2॥
‘द्यानत’ कहै सुमति सखियन को, तुम कछु शिक्षा द्यो॥3॥

वाह, सारे नगर में होली मनाई जा रही है। परन्तु मेरे पति तो घर पर ही नहीं हैं, मैं कैसे होली खेलूँ? मेरे पति तो कुमति के साथ रच-पच रहे हैं, उन्हें किसी प्रकार लाओ। द्यानतराय कहते हैं कि सुमति अपनी सखियों से कह रही है कि तुम उसको कुछ शिक्षा देओ।

(8)

(4)

खेलौंगी होरी, आये चेतनराय॥ खेलौंगी॥ टेक॥

दरसन वसन ज्ञान रंग भीने, चरन गुलाल लगाय॥1॥

आनंद अतर सुनय पिचकारी, अनहद बीन बजाय॥2॥

रीझौं आप रिझावौं पिय को, प्रीतम लौं गुन गाय॥3॥

‘द्यानत’ सुमति सुखी लखि सुखिया, सखी भई बहु भाय॥4॥

अहो चेतन राजा आ गये, अब मैं होली खेलूंगी। दर्शनरूपी वस्त्रों को ज्ञान रंग में भिगोकर चारित्र का गुलाल लगाऊंगी। आनन्द का इत्र सुनय की पिचकारी लेकर अनहद बीन बजाऊंगी। स्वयं भी रीझूंगी और अपने राजा का भी रिझाऊंगी। प्रियतम के गुण गाऊंगी। द्यानतराय कवि कहते हैं कि सुमति को सुखी देखकर उसकी सभी सखियाँ सुखी हो गई।

(5)

भली भई यह होरी आई, आये चेतनराय॥ भली॥ टेक॥

काल बहुत प्रीतम बिन बीते, अब खेलौं मन लाय॥1॥

सम्यक् रंग गुलाल वरत में, राग विराग सुहाय।

‘द्यानत’ सुमति महासुख पायो, सो वरन्यो नहिं जाय॥2॥

बहुत अच्छी होली आई है कि चेतनराजा आ गये। प्रियतम के बिना बहुत काल बीत गया, अब मैं मन लगाकर उनसे खेलूंगी। सम्यक्त्व रूप रंग और व्रतरूपी गुलाल के साथ राग को वैराग्य में बदलकर अच्छा लग रहा है। द्यानतराय कहते हैं कि आज सुमति ने जो महासुख पाया है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

(9)

(6)

होरी खेलौंगी, घर आये चिदानंद कन्त॥ टेक॥

शिशिर मिथ्यात गयो आई अब, काल की लब्धि बसन्त॥
होरी॥

पिय सँग खेलन को हम सखियो! तरसीं काल अनन्त।
भाग फिरे अब फाग रचानों, आयो बिरह को अन्त॥1॥
होरी॥

सरधा गागर में रुचिरूपी, केसर घोरि तुरन्त।
आनंद नीर उमंग पिचकारी, छोड़ो नीकी भन्त॥2॥
होरी॥

आज वियोग कुमति सौतनि कै, मेरे हरष महन्त।
'भूधर' धनि यह दिन दुर्लभ अति, सुमति सखी विहसन्त॥3॥
होरी॥

सुमति रूपी नारी कहती है कि आज मैं सचमुच होली खेलूंगी, क्योंकि आज मेरे स्वामी चिदानंद मेरे घर आ गये हैं और काललब्धि रूपी वसंत ऋतु भी आ गई है।

हे सखियो! मैं अनंत काल से अपने स्वामी के साथ खेलने के लिए तरस रही थी, परंतु अब मेरा भाग्य उदय हुआ है कि विरह का अंत आ गया और मैं फाग रचा रही हूँ।

मैंने श्रद्धारूपी गागर में रुचि रूपी केसर घोली, आनंदरूपी जल मिलाया और उत्साह रूपी पिचकारी अच्छी तरह चलाई है।

आज मेरी कुमति रूपी सौतनों को स्वामी का वियोग हुआ है। भूधरदास कवि कहते हैं कि आज का दिन अत्यंत दुर्लभ है। आज सुमति रूपी नारी बहुत प्रसन्न है। बड़ा ही धन्य अवसर है आज।

(10)

(7)

ज्ञानी ऐसे होली मचाई॥ टेक॥

राग कियो विपरीत विपन-घर, कुमति कुसौति भगाई।
धार दिगम्बर कीन्ह सुसंवर, निज-पर-भेद लखाई।
घात विषयन की बचाई॥ ज्ञानी॥

कुमति सखा भज ध्यान भेद सज, तन में तान उड़ाई।
कुम्भक ताल मृदंग सो पूरक, रेचक बीन बजाई।
लगन अनुभव सों लगाई॥ ज्ञानी॥

कर्म बलीता रूप नाम अरि, वेद सुइन्द्रि गनाई।
दे तप-अग्नि भस्म करि तिनको, धूलि-अघाति उड़ाई।
करी शिवतिय सों मिलाई॥ ज्ञानी॥

ज्ञान को फाग भागवश आवे, लाख करो चतुराई।
सो गुरु दीनदयाल कृपा करि, 'दौलत' तोहि बताई।
नहीं चित से विसराई॥ ज्ञानी॥

अहो, ज्ञानी जीव ऐसी होली खेलते हैं:—

वे राग का त्याग करके वन में निवास करते हैं, कुबुद्धिरूपी बुरी सौतन को भगा देते हैं, दिगम्बर मुद्रा धारण करके कर्मों का भली प्रकार संवर करते हैं, स्व और पर का भेदविज्ञान करते हैं तथा अपने आपको विषयों के प्रहारों से बचाते हैं।

वे अज्ञानरूपी मित्र को भगाते हैं, ध्यान के उत्तम भेदों को धारण करते हैं, अपने अन्तरंग को पूरी तरह उत्साह से भरते हैं, कुम्भकरूपी ताल, पूरकरूपी मृदंग एवं रेचकरूपी वीणा बजाते हैं और एक आत्मानुभव की ही लगन लगाये रहते हैं।

वे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय व अन्तराय— इन घाति कर्मों के ईधन को तपरूपी अग्नि देकर भस्म कर देते हैं और फिर अघाति कर्मों को भी धूल के समान उड़ाकर मुक्तिरूपी स्त्री से मिलते हैं।

कविवर दौलतराम कहते हैं कि अहो, कोई कितना ही प्रयत्न कर ले, पर ऐसी ज्ञान की होली तो बड़े भाग्य से ही किसी को मिल पाती है। यह तो, अब दयालु गुरु ने बड़ी कृपा करके मुझे ऐसी होली से परिचित करा दिया है, अतः अब मैं इसे कभी नहीं भूलूँगा।

(11)

(8)

मेरो मन खेलत ऐसी होरी।टेक॥
मन मिरदंग साजि कर त्यारी, तन को तमूरा बनो री॥
सुमति सुरंग सरंगी बजाई, ताल दोऊ कर जोरी॥
राग पांचो पद को री ॥ मेरो॥
समकित रूप नीर भर झारी, करुना केशर घोरी।
ज्ञानमई लेकर पिचकारी, दोउ कर मांहि सम्होरी।
इन्द्रिय पांचों सखि बोरी ॥ मेरो॥
चतुर दान को है गुलाल सो, भर-भर मूठ चलो री।
तप मेवा सों भर निज झोरी, यश को अबीर उड़ो री।
रंग जिनधाम मचो री ॥ मेरो॥
'दौलत' बाल खेलें अस होरी, भव-भव दुःख टलो री।
शरना लै इक श्री जिन को री, जग में लाज रहे तोरी॥
मिलै फगुआ शिवगोरी ॥ मेरो॥

अहो, मेरा मन ऐसी होली खेल रहा है—

मैंने अपने मन को मृदंग के रूप में सजा रखा है, मेरे दोनों हाथ मंजीर बने हुये हैं और मेरा शरीर ही तानपूरा बना हुआ है। मैं इन बाजों के साथ सुबुद्धि रूपी सुन्दर सारंगी बजा रहा हूँ, दोनों हाथों को जोड़कर ताल दे रहा हूँ और पंच परमेष्ठी के राग का गायन कर रहा हूँ।

मेरे पास सम्यक्त्वरूपी जल से भरी हुई झारी है जिसमें करुणारूपी केशर घुली हुई है। मैंने अपने दोनों हाथों से ज्ञानमयी पिचकारी को सावधानी पूर्वक पकड़ रखा है और उससे पाँचों इन्द्रियरूपी सखियों को पूरी तरह डुबा दिया है— पराजित कर दिया है।

मेरे पास चार दान रूपी गुलाल है, जिसे मुट्ठी भर-भर कर चलाया जा रहा है। इसके पश्चात् तपरूपी मेवा से मैंने अपनी झोली भर ली है। चारों ओर यशरूपी अबीर उड़ रहा है। ऐसा यह होली का उत्सव जिनेन्द्रदेव के मन्दिर में मनाया जा रहा है।

कविवर दौलतराम कहते हैं कि— हे जिनेन्द्रदेव! मैं बालक एक आपकी ही शरण लेकर ऐसी होली खेल रहा हूँ। मुझे विश्वास है कि इससे मेरे जन्म-जन्म के दुःख दूर हो जाएँगे, आपका यश बच जाएगा और मुझे फगुआ के रूप में मुक्तिरूपी स्त्री भी मिल जाएगी।

(12)

(9)

निजपुर में आज मची होरी ।।टेर।।

उमंग चिदानंदजी इत आये, इत आई सुमती गोरी।।1।।

लोकलाज कुलकानि गमाई, ज्ञान गुलाल भरी झोरी।।2।।

समकित केसर रंग बनायो, चारित की पिचुकी छोरी।।3।।

गावत अजपा गान मनोहर, अनहद झरसौं बरस्यो री।।4।।

देखन आये 'बुधजन' भीगे, निरख्यौ ख्याल अनोखो री।।5।।

अहो, आज निजपुर (आत्मनगर) में होली मची हुई है। देखो, इधर चिदानन्दजी उमंग कर आ रहे हैं और उधर से सुमति गोरी आ रही है। इन्होंने लोकलाज, कुलमर्यादा छोड़कर ज्ञानगुलाल की झोली भर ली है। सम्यक्त्वरूपी केसर का रंग भरकर चारित्र की पिचकारी छोड़ रहे हैं। अजपा गान सुन्दर गा रहे हैं, अनहद नाद बरस रहा है। देखनेवाले ज्ञानी लोग भी इस अनुपम होली को देख कर इसमें भीग गये हैं।

(10)

श्री जिनवर दरबार, खेलूंगी होरी।। श्री जिनवर।। टेक।।

पर विभाव का भेष उतारूं, शुद्ध स्वरूप बनाय, खेलूंगी होरी।।1।।

कुमति नारिकों संग न राखूं, सुमति नारि बुलवाय, खेलूंगी होरी।।2।।

मिथ्या भस्मी दूर भगाऊं, समकित रंग चुवाय, खेलूंगी होरी।।3।।

निजरस छाक छक्यौ 'बुधजन' अब, आनंद हरष बढ़ाय,
खेलूंगी।।4।।

अहो, अब मैं श्री जिनेन्द्र के दरबार में होली खेलूंगी। पर-विभाव का भेष उतारकर शुद्ध स्वरूप बनाऊंगी। अब मैं कुमति रूपी स्त्री को अपने साथ नहीं रखूंगी और सुमतिरूपी स्त्री को बुला लूंगी। मिथ्यात्व रूपी भस्म को दूर हटाकर सम्यक्त्व रूपी रंग लगाऊंगी। बुधजन कवि कहते हैं कि मैं अब अपने ही रस में छककर अपना आनन्द हर्ष बढ़ाऊंगी।

(13)

(11)

चेतन तोसों आज होरी खेलौंगी रे॥ चेतन०॥ टेक॥
अनंत दिवस क्यों अनतहि डोल्याँ, ताकौ बदला अब ल्यौंगी रे॥1॥
जो तैं करी सो भंडुवा गवाऊं, संजमतैं कर बाँधौंगी रे।
त्रास परीषह लगैगी तेरै, तब सुधताई आवैगी रे॥2॥
जिन तोकों दुख दै भरमायौ, ता दुर्मतिकों भगावौंगी रे।
खोटे भेष धरे लंगर तैं, अब शुभ भेष बना द्यौंगी रे॥3॥
समकित दरस गुलाल लगाऊं, ज्ञान सुधारस छिरकौंगी रे।
चारित चोबा चरचौं सब तन, दया मिठाई खबावौंगी रे॥4॥
'बुधजन' यौ तन सफल करौंगी, विधि-विपदा सब चूरौंगी रे।
हिलमिल रहूँ बिछुरौं नहिं कबहूँ, मन की आशा पूरौंगी रे॥5॥

हे चेतन! आज मैं तुझसे होली खेलूंगी। तू अनन्त काल से अन्यत्र ही डोलता रहा है, अब उसका बदला लूंगी। तूने बहुत उपद्रव किये हैं, पर अब संयम से तेरे हाथ बाँधूंगी। तुझे दुःख लगेंगे, तभी तुझे सुध आएगी। जिसने तुझे दुःख देकर भटकाया है, उस दुर्मति को दूर भगाऊँगी। तूने खोटे वेश धारण किए हैं, परन्तु अब मैं तेरा शुभ रूप बना दूंगी। सम्यग्दर्शन रूपी गुलाल लगाऊँगी, ज्ञान रूप अमृत रस छिड़कूँगी, चारित्र रूपी चोबा शरीर पर मलूँगी और दया रूपी मिठाई खिलाऊँगी। बुधजन कवि कहते हैं कि यह तन सफल करके कर्म रूपी दुःखों को नष्ट करूँगी। हम हिलमिल कर रहें, कभी नहीं बिछुड़ें – ऐसी मन की आशा पूर्ण करूँगी।

(14)

(12)

अब घर आये चेतनराज, सजनी खेलौंगी मैं होरी॥ अब॥।टेक॥
आरस सोच कानि कुल हरिकै, धरि धीरज वरजोरी॥1॥
बुरी कुमति की बात न बूझै, चितवत है मो ओरी।
वा गुरुजन की बलि ले जाऊं, दूर करि मति भोरी॥2॥
निज सुभाव जल हौज भराऊं, घोरुं निजरंग रोरी।
निज ल्यौं ल्याय शुद्ध पिचकारी, छिरकन निज मति दोरी॥3॥
गाय रिझाय आप वश करिकै, जावन द्यौं नहि पोरी।
'बुधजन' रचि पचि रहूं निरंतर, शक्ति अपूरव मोरी॥4॥

हे सखी, चेतन राजा घर आ गये हैं, मैं होली खेलूंगी। दुःख शोक, शर्म, लाज सब छोड़कर धैर्य धारण करूंगी।

मेरे पति अब कुमति की बात नहीं मानते हैं और मेरी ही ओर देखते हैं। मैं अपने गुरुदेव की आभारी हूँ कि उन्होंने उसकी अज्ञान बुद्धि दूर कर दी।

अब मैं अपने स्वभाव जल का कुंड भराऊंगी और उसमें आत्मरंग की रोली घोलूंगी। आत्मलगन की शुद्ध पिचकारी दौड़कर छिड़कूंगी।

अब मैं उसे गाकर, रिझाकर अपने ही वश में रखूंगी, दूसरे के घर नहीं जाने दूंगी। बुधजन कवि कहते हैं कि मैं सदा उसी में गहराई से लीन रहूंगी। मूझ में अपूर्व शक्ति है।

(15)

(13)

और सबै मिलि होरि रचावैं, हूं काके सँग खेलौंगी होरी॥टेक॥
कुमति हरामिनि ज्ञानी पिया पै, लोभ मोह की डारी ठगौरी।
भोरै झूठ मिठाई खवाई, खोंसि लये गुन करि वरजोरी॥1॥
आप हि तीन लोक के साहिब, कौन करै इनकै सम जोरी।
अपनी सुधि कबहूँ नहिं लेते, दास भये डोलैं पर पौरी॥2॥
गुरु 'बुधजन' तैं सुमति कहत है, सुनिये अरज दयाल सु मोरी।
हा हा करत हूँ पाँय परत हूँ, चेतन पिय कीजे मो ओरी॥3॥

और सब लोग तो मिलकर होली खेल रहे हैं, पर मैं किसके साथ होली खेलूँ? कुमति रूपी हरामिन स्त्री ने मेरे ज्ञानी पति पर लोभ मोह की ठगौरी डाल दी है, उसने झूठी मिठाई खिलाकर उसके उत्तम गुण छीन लिये हैं।

मेरा पति स्वयं तीन लोक का नाथ है, कौन उसकी बराबरी कर सकता है, परन्तु अपनी सुधि नहीं लेने के कारण दास होकर दूसरों के आंगन में पड़ा है।

बुधजन कवि कहते हैं कि सुमति-स्त्री गुरु से कहती है कि हे दयालु गुरुदेव, मैं आपके पैर पड़कर प्रार्थना करती हूँ कि आप मेरे पति चेतन को मेरी ओर कर दीजिए।

(16)

कहा बानि परी पिय तोरी, कुमति संग खेलत है नित होरी॥टेक॥
कुमति कूर कुबजा रंग राची, लाज शरम सब चोरी।
रागद्वेष भय धूल लगावे, नाचे ज्यों चकडोरी॥1॥
अक्ष विषय रंग भरि पिचकारी, कुमति कुत्रिय सरबोरी।
जा संग चिर दुखी भये, फिर प्रीति करत बरजोरी॥2॥
निजघर की पिय सुधि विसारि के परत पराई पोरी।
तीन लोक के ठाकुर कहियत सो विधि सबरी बोरी॥3॥
बरजि रही बरजो नहिं मानत ठानत हठ बर जोरी।
हठ तजि सुमति सीख भजि 'मानिक' तो विलसो शिवगोरी॥4॥

सुमतिरूपी स्त्री अपने पति आत्मदेव से कहती है कि हे प्रियतम! यह तुम्हें कैसी बुरी आदत पड़ी है कि तुम अनादिकाल से आज तक हमेशा कुमति रूपी स्त्री के साथ होली खेलते हो!

हे प्रियतम! यह कुमति रूपी स्त्री क्रूर (निर्दयी) है, कुब्जा (शारीरिक व मानसिक रूप से अस्वस्थ) है, और संसार के मिथ्या रंगों में रची-पची हुई है। इसने लाज-शर्म को पूरी तरह त्याग कर दिया है। यह सदैव राग-द्वेष रूपी धूल को लगाती है और चकडोरी की तरह नाचती रहती है।

हे प्रियतम! उस कुमति रूपी स्त्री ने अपनी पिचकारी में पंचेन्द्रिय-विषयों का रंग भर रखा है और उससे तुम्हें सराबोर भी कर दिया है। तुम इसके साथ ऐसी होली खेलकर अनादि काल से अब तक बहुत दुखी हो चुके हो, परन्तु अभी भी उसी से अत्यधिक प्रेम करते हो।

हे प्रियतम! मैं तुम्हें (कुमति रूपी स्त्री के साथ होली खेलने के सम्बन्ध में) बहुत मना कर रही हूँ, पर तुम मना करते-करते भी मान नहीं रहे हो और जबरदस्ती अपनी ही हठ चला रहे हो।

कविवर माणिक कहते हैं कि अब तुम अपनी बुरी हठ छोड़ो और अपनी सुमतिरूपी स्त्री की उक्त शिक्षा को ग्रहण करो, ताकि तुम मोक्ष रूपी स्त्री के साथ आनन्द से रह सको।

(15)

जामें आवागमनवा की डोरी। हमारे को खेलै ऐसी होरी॥ टेक॥
हिंसादिक नित धाय-धाय के बहु विधि कर पकरो री।
पाप कीच बहु भाँति लपेटत विषय कुरंग छिरको री॥1॥
कुमति कुनारि डारि भ्रम फाँसी बहुत करी बरजोरी।
कर्मधूल अंग ल्यावत प्यावत मोह अमल कटोरी॥2॥
कषाय पचीस नृत्यकारिन संग गति-गति नाचत ओरी।
राग दोष दोउ छैल छबीले देत कुमत की डोरी॥3॥
यों चिरकाल खेल जिय 'मानिक' पाये दुःख करोरी।
जैनधर्म परभाव भविक अब प्रीति सुपद सों जोरी॥4॥

अहो, जिसमें आवागमन का चक्र घूमता है, ऐसी यह होली हम कैसे खेलें? क्यों खेलें? होली खेलने में हिंसादि भाव दौड़-दौड़कर हमारा हाथ पकड़ लेते हैं और अनेक तरह से हमारे ऊपर पापरूपी कीचड़ लपेट देते हैं तथा विषयरूपी बुरा रंग भी छिड़क देते हैं।

होली में कुमतिरूपी बुरी स्त्री भ्रमरूपी फाँसी डालकर हमें पकड़ लेती है, हमारे साथ बहुत जबरदस्ती करती है, हमारे शरीर पर कर्मरूप धूल चिपकाती है और मोहरूपी अम्ल (नशाकारक वस्तु) का प्याला पिलाती है।

इसके बाद वह कुमतिरूपी बुरी स्त्री पच्चीस कषायरूप नृत्यकारिणियों के साथ हर गति में भ्रमण कराती है और उसमें राग एवं द्वेष नाम के दो छैल-छबीले (उद्दण्ड युवक) उसका सदा साथ देते हैं।

कवि माणिक कहते हैं कि हे भव्य! हे भाई! तुम इस प्रकार गन्दी होली खेलकर अनादिकाल से आज तक बहुत दुख उठा चुके हो, अतः अब जैनधर्म के प्रभाव को समझकर अपने आत्मपद से, चैतन्यपद से प्रेम सम्बन्ध जोड़ो।

(18)

(16)

जे सहज होरी के खिलारी, तिन जीवन की बलिहारी॥
शान्त भाव कुंकुम रस चन्दन, भर समता पिचकारी।
उड़त गुलाल निर्जरा संवर, अंबर पहरें भारी॥
सम्यग्दर्शनादि संग लेके, परम सखा सुखकारी।
भीज रहे निज ध्यान रंग में, सुमति सखी प्रिय नारी॥
करि स्नान ज्ञान जल में पुनि, विमल भये शिवचारी।
“भागचन्द” तिन प्रति नित वंदन, भाव समेत हमारी॥

जो सहज स्वभाव की होली को खेलते हैं, उन जीवों को मैं प्रणाम करता हूँ। वे जीव शांत भाव रूपी कुंकुम-चन्दन का रस समता रूपी पिचकारी में भरते हैं और ज्ञान-वस्त्र पहनकर संवर-निर्जरा की गुलाल उड़ाते हैं। उनके साथ सम्यग्दर्शनादि सुखदायक सखा होते हैं और अपनी प्रिय सखी सुमति के साथ आत्मध्यान रूपी रंग में भीग जाते हैं। जो जीव ज्ञानजल में स्नान करके मोक्षमार्गी अत्यन्त निर्मल हो गये हैं, कविवर भागचन्द कहते हैं कि मैं उन जीवों को भावसहित नित्य वन्दन करता हूँ।

(19)

(17)

[राग सोरठ]

कैसे होरी खेलूँ होरी खेल न आवै। टेरा।
प्रथम पाप हिंसा जा मांही, दूजे झूठ जु पावै॥1॥
तीजे चोर कलाविद जाँमैं, नैक न रस चुप जावै॥2॥
चोथो परनारी सौं परचैं, शील वरत मल लावै।
तृष्णा पाप पाचऊ जाँमैं, छिन छिन अधिक बढ़ावै॥3॥
सब विधि अशुभ रूप जे कारिज, करत ही चित चपलावै।
अक्षर ब्रह्म खेल अति नीको, खेलत हिये हुलसावै॥4॥
'जगताराम' सोही खेल खेल खेलिये, जो जिन धर्म बढ़ावै॥5॥

मैं होली कैसे खेलूँ? खेला ही नहीं जाता।

प्रथम तो उसमें हिंसा का महापाप लगता है, दूसरे झूठ का भी उसमें पाप लगता है, तीसरे चोरी का भी पाप उसमें लगता है, चौथा परनारी का सम्पर्क होने से शीलव्रत में भी मलिनता आती है और पाँचवें तृष्णा भी हर क्षण बढ़ती रहती है।

अतः जो सभी प्रकार से अशुभ हो— ऐसी इस होली को मैं कैसे खेलूँ? इससे तो चित्त में अत्यधिक चंचलता उत्पन्न हो जाती है।

कवि जगताराम कहते हैं कि अक्षरब्रह्म का खेल ही वस्तुतः श्रेष्ठ है, खेलने योग्य है, उसे खेलने से चित्त में सच्ची प्रसन्नता उत्पन्न होती है। हमें वही खेल खेलना चाहिए, जिससे जिनधर्म की वृद्धि हो।

(20)

(18)

[राग काफी होरी]

कैसी होरी मचाई आज पिया भूल गुमाई।टेर॥

अनुभव रंग बनाय अनूपम, बुधि पिचकारी बनाई।

तीन करण की रंगभूमि में, ज्ञान की रौल मचाई॥1॥

भाव पोटरी कीनी सूक्ष्म, लोभ की धूलि उडाई।

उपशम मोह क्षिपो बलहारक, तास की खबर न पाई॥2॥

बारहवें गुणस्थान सलिल में 'राम' करी उजलाई।

तेरहवें गुणस्थान महल में केवल सेज बिछाई॥3॥

हे प्रिय! आज यह आपने कैसी अद्भुत होली मनाई है? आज सर्व भ्रान्ति नष्ट हो गई है और आत्मानुभव का अनुपम रंग तैयार करके बुद्धि (सम्यग्ज्ञान) रूपी पिचकारी में भर लिया है। अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण की रंगभूमि में ज्ञान की ऐसी रोली सजाई है कि सूक्ष्म धारा बन गई है, लोभ की धूल उड़ गई है और बलहारक मोह भी ऐसा छिपा है कि उसकी कोई खबर नहीं मिलती। जगताराम कहते हैं कि बारहवें गुणस्थान रूपी जल से आत्मा ने उज्ज्वल स्थान कर लिया है और तेरहवें गुणस्थान रूपी महल में केवलज्ञान की सेज बिछा ली है।

(21)

यह संमक समय वसंत होरी खेलिये।
 शमि ग्यानादिक सखा तिन कौं, अपनै संग मेलिये॥
 पर परनति परनारि में, तिन के पति करमनि भेलिये।
 निज परनति निजनारि कौं, निज साथि लगाये के लिये॥
 दया क्षमा समता नुता, सरलता सबै सुहेलिये।
 सोहं गेंद उछालि कै, उपयोग गरन ते झेलिये॥
 केसरि दरसन सुधता, उजल जल मांहि सकेलिये।
 भरि पिचकारी सुरति की रंग निज तिय पर ठेलिये॥
 शील सलिल अति निरमलौ, संजम वेला भाई पेलिये।
 दान अवीर उड़ाये कै, सुभ राग गुलाल झमेलिये॥
 कर्म क्रिया कलाप मैं परस्पर करि अँचि धकेलिये।
 भेदविग्यान विज्ञान कीए, टोक अलोक उचेलिये॥
 प्रीति छकनि इह अमल लजै, पद राग समाज उगेलिये।
 दस लक्षण दस पान कै, वीरे शुभ नागरवेलिये॥
 इह विधि खेल मचाइये, समरस रस अंग उजेलिये।
 सुकल वसन तन पहनि कै, 'जगताराम' सुकाम उथेलिये॥

वसन्त के उचित समय पर होली खेलिए। उपशम, ज्ञान आदि सखाओं को अपने साथ मिलाइए। परपरिणति रूप परस्त्री को छोड़कर निजपरिणतिरूप स्वस्त्री को अपने साथ लगाइए। दया, क्षमा, समता, सरलता आदि सहेलियों को साथ लेकर सोहं रूपी गेंद उपयोग में उछालिए। सम्यग्दर्शनरूपी केसर है, उसे शुद्धता रूपी उज्ज्वल जल में घोलिए। उसे ही स्व-स्त्रियों पर छिड़किए। शीतल जल निर्मल है। संयम धारण करिए। दान का अबीर उड़ाइए। शुभ राग गुलाल है। कर्मरूपी कीचड़ को धोकर भेदविज्ञान का प्रकाश फैलाइए। दशलक्षण धर्म ही नागरबेल के दस पान हैं। जगताराम कहते हैं कि इस प्रकार समरस रंग में भीग कर और शुक्ल वस्त्र पहन कर होली खेलिए।

(20)

[राग रामकली]

होरी कौ ख्याल मच्यौ है।

जिन राजा सुध परनति रानी, रस बस चाहि रच्यौ है॥

अनुभव रंग सुरति पिचकारी, छिरकत हियौ न हच्यौ है।

अंग अंग सरवंग सगवगे, दुहुधा कौन बच्यौ है॥

सुष मैं लीन न विछुरत क्यों हूं, वीरज अतुल जच्यो है।

‘जगतराम’ कौतुक लखि मननट, उमंगि उमंगि नच्यौ है॥

अहो, देखो होली का खेल हो रहा है। जिनेन्द्र राजा हैं, शुद्ध परिणति रानी है। आनन्द का रस है जिसमें वे रचे हैं। अनुभव का रंग है, लीनता की पिचकारी है, जी भर कर छिड़का जा रहा है। अंग अंग सर्वांग भीग गये हैं, कोई दुविधा बची नहीं है। वे अनन्त सुख में लीन हो गये हैं, अनन्त वीर्य प्रकट हो गया है। जगतराम कहते हैं कि यह नाटक देखकर मेरा मन-नट भी उमंगित होकर नाचने लग गया है।

(23)

(21)

[राग विहाग]

ऐसी नीकी होरी प्रभु ही के बनि आवैं।
निज परनति रानी रंग भीनी, अपने रंग खिलावै।।टेर॥
ज्ञान सलिल दृग केसर चारित, चोबा चरचि रचावै।
दया गुलाल अबीर उडावै, सुख मद छक ने छकावै।।1॥
नय वृज नृत्यकारिणी नाचे, नाना भाव बतावै।
स्याद्वाद सोई नाद आलापे, लय ताननि सों रिझावै।।2॥
ऐसे रस वश कर लीनो जो अनत न जान न पावे।
सरबस फगवा ले जगपति को, निज मंदिर विरमावे।।3॥

अहो, ऐसी श्रेष्ठ होली तो प्रभु (जिनराज/मुनिराज) के ही जीवन में होती है।

वे निज परिणति रूपी रानी के रंग में भीगकर अपने ही स्वभाव के अनुकूल प्रवर्तन करते हैं।

ज्ञानरूपी जल, दर्शनरूपी केसर और चारित्ररूपी चोबा बनाते हैं और दयारूपी गुलाल व अबीर उड़ाते हैं और सुख के भण्डार में छक जाते हैं।

नाना नय रूपी नृत्यकारिणियाँ नृत्य कर रही हैं और नाना अपेक्षाएँ बता रही हैं। वे स्याद्वाद का नाद आलाप रही हैं और अपनी-अपनी तान पर ही मन प्रसन्न कर रही हैं।

इस प्रकार अपना मन पूरी तरह वश में हो गया है, वह अन्यत्र कहीं नहीं जा रहा है। उसे अपना सर्वस्व फगुवा मिला है जो वह निजमन्दिर में ही रम गया है।

(24)

(22)

खेल ले ऐसी होरी। मिले सुख संपत्ति तोरी॥टेक॥
अष्ट कर्म ईंधन संचय में, तप की अग्नि लगाओ।
शुक्ल ध्यान की पवन चलाकर, ऊँची ज्वाल बढ़ाओ।
हो प्रकाश चहुँ ओरी॥1॥
निश्चय चरित सुधा सरसा कर, सारी भस्म बहाओ।
निज परिणाम थान निर्मल कर, सुषमा सर्व सजाओ।
हो प्रसन्न शिव गौरी॥2॥
साधर्मी जन सांचे परिजन, तिन में प्रीति बढ़ाओ।
फेंक प्रमोद गुलाल ज्ञान से, निज पर अंग रंगाओ।
नमो जिन शिव रति जोरी॥3॥
आतम अनुभव भोजन रचकर, खाओ और खिलाओ।
नित्यानन्द अमंद मनोहर, सार अमर पद पाओ।
रमे चित मंगल ओरी॥

हे जीव! तुम ऐसी होली खेलो, इससे तुम्हें सुख-सम्पत्ति प्राप्त होगी। संचित किये गये अष्ट कर्म रूपी ईंधन में तप की अग्नि लगा दो और शुक्लध्यान की हवा चलाकर ऊँची ज्वाला करो, ताकि चारों ओर प्रकाश फैल जाए।

निश्चय चारित्र का अमृत बरसाकर सारी भस्म बहा दो। अपने परिणाम निर्मल करके अपना सर्व सौन्दर्य प्रकट करो, ताकि मोक्ष-स्त्री प्रसन्न हो जाए।

साधर्मी जन ही परिजन हैं, उनसे प्रीति बढ़ाओ, ज्ञान के गुलाल को प्रमोद पूर्वक फेंक कर अपने और दूसरों के शरीर पर लगाओ। उन्हें नमस्कार करो जिन्होंने मुक्ति से प्रेम जोड़ा है।

आत्मानुभव का भोजन बनाकर स्वयं भी खाओ और दूसरों को भी खिलाओ। अनन्त नित्यानन्दमय सुन्दर श्रेष्ठ शाश्वत पद को प्राप्त करो। यही मंगल है, इसी में चित्त को रमाओ।

(25)

(23)

होली खेलें मुनिराज शिखर वन में, रे अकेले वन में, मधुवन में
मधुवन में आज मची रे होली, मधुवन में...। होली खेलें..
चैतन्य गुफा में मुनिवर बसते, अनंत गुणों में केली करते।
एक ही ध्यान लगाया वन में, मधुवन में...। होली खेलें..
ध्रुवधाम ध्येय की धूनी लगाई, ध्यान-धधकती अग्नि जलाई।
विभाव का ईंधन जलावें वन में, मधुवन में...। होली खेलें..
आत्मिक जीवन ऐसा जीते, सिद्ध प्रभु सम चलते-फिरते।
शुद्धि की वृद्धि बढ़ाई वन में, मधुवन में...। होली खेलें..
अक्षय घट भरपूर तुम्हारा, अन्दर बहती अमृत-धारा।
पतली धार न भाई मन में, मधुवन में...। होली खेलें..
पिता झलक ज्यों पुत्र में दिखती, जिनेन्द्र झलक मुनिराज चमकती।
श्रेणी मांडि पलक छिन में, मधुवन में...। होली खेलें..
नेमिनाथ गिरनार पर देखो, शत्रुंजय पर पाण्डव देखो।
केवलज्ञान लियो रे छिन में, मधुवन में...। होली खेलें..
अन्तर साधना मुनि की भाई, बाहर से न दिखती भाई।
साधना निरन्तर भायी वन में, मधुवन में...। होली खेलें..
हमें भी पूर्ण दशा ही चाहिये, सादि-अनंत का आनंद लहिये।
निर्मल भावना भावें वन में, मधुवन में...। होली खेलें..
बार-बार वंदन हम करते, शीश चरण में उनके धरते।
भव से पार लगावें वन में, मधुवन में...। होली खेलें...

अर्थ- इसका अर्थ सरल है। आप स्वयं ध्यान देकर पढ़ें
तो समझ सकते हैं।

(26)

(24)

होरी खेलें मुनिराज अकेले वन में, खड़े वन में।टेक॥

काहे की प्रभुजी होली बनाई, काहे की आग लगाई वन में।

कर्म काठ की होली बनाई, तप की आग लगाई वन में॥ 1॥

काहे का कीच काहे का गारा, काहे की धूल उड़ाई वन में।

ज्ञान का कीच चरित का गारा, कर्मों की धूल उड़ाई वन में॥2॥

काहे की गुलाल काहे की पिचकारी, काहे को रंग भरे वन में।

ज्ञान गुलाल चरित पिचकारी, दर्शन को रंग भरे मन में॥3॥

ऐसी होरी जो कोई खेले, पाप कटे उनके छिन में।

ऐसी होरी खेले मुनिराजा, फेर न आवे भव वन में॥4॥

अहो, मुनिराज अकेले ही खड़े-खड़े वन में ऐसी आध्यात्मिक होली खेलते हैं। वे कर्मरूपी काष्ठ (ईधन) की होली बनाकर उसमें तप की आग लगा देते हैं। सम्यक्ज्ञान-चारित्र के कीच से कर्मों की धूल उड़ाते हैं। वे सम्यक्ज्ञान के गुलाल और सम्यक्दर्शन के रंग को सम्यक्चारित्र की पिचकारी से अपने मन में भर रहे हैं।

ऐसी होली जो कोई खेलता है वह फिर से संसार में जन्म नहीं लेता है। यही कारण है कि ऐसी होली खेलने वाले मुनिराज पुनः भव-वन में नहीं भटकते।

(27)

(25)

[राग कालंगडा]

आज जादुपति खेलै होरी ॥टेर॥
समदविजयजी रा प्यारा, जीवन प्राण हमारा,
चले चित चोरी॥1॥
राज भार तज दीना, पंच महाव्रत लीना,
धरम के धोरी॥2॥
केवल ज्ञान उपायो, हित कर शीस नमायो,
नेम कर जोरी॥3॥

अहो, आज यादवपति नेमिनाथजी होली खेल रहे हैं। वे राजा समुद्रविजयजी के पुत्र हैं, पर हमारे प्राण हैं, उन्होंने हमारा चित्त आकर्षित कर लिया है।

उन्होंने राज्य का भार त्याग कर पंच महाव्रत धारण कर लिये और वे धर्मधुरन्धर बन गये। उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। मैं उन्हें हितबुद्धि से हाथ जोड़कर सिर झुकाता हूँ।

(26)

[राग सारंग]

केशरिया के द्वार मची होरी॥टेर॥
केशर चन्दन अगर मिला के चरणों पर चरचूँ भौरी॥1॥
या पूजत तें दूर होत हैं अशुभ करम की झकझोरी॥2॥
सेवक की अब यही अरज है भव भव शरण लेहूँ तोरी॥3॥

केशरिया (ऋषभदेव) के द्वार पर आज होली मची हुई है। केशर-चन्दन अगर यदि मिलाकर उनके चरणों में चढ़ाया जा रहा है। उनकी ऐसी पूजा से अशुभ कर्मों का ढेर नष्ट हो जाता है। हे केशरिया! मुझे सेवक की आपसे यही प्रार्थना है कि मुझे भव-भव में आपकी शरण मिलती रहे।

(28)

(27)

[राग-काफी होरी]

ऐसी होरी खेलन को नहीं जी चाहे,
मेरे मन वैराग भयो री आज।।टेर।।
सुन री सखी एक अरज हमारी, संजम ल्युं गिरवर पे जाय।।1।।
यासैं करम कटे पूरवले सफल होय निज काय।
सेवा चरण कमल की करूँगी मंत्र जपूँ मन वचन काय।।2।।

हे सखी! मेरा मन दुनिया की ऐसी होली खेलना नहीं चाहता है, मुझे तो वैराग्य हो गया है। मेरी अभिलाषा यह है कि मैं किसी उत्तम पहाड़ पर जाकर संयम धारण कर लूँ, ताकि समस्त पूर्वकर्म कट जाएँ और मेरा आत्महित का कार्य सफल हो। मैं निरन्तर मन-वचन-काय से पंच परमेष्ठी के चरण-कमलों की सेवा करूँ और उनके ही मंत्र जपती रहूँ।

(28)

[राग-सोरठ]

ऐसे होरी खेलो हो चतुर खिलारि। टेरे।
धर्म थान जहाँ सब सज्जन जन, मिलि बैठो इकठार।।1।।
ज्ञान सलिल पूरण पिचकारी, वानी वरषा धार।
झेलत प्रेम प्रीति सौ जेते, धोवत करम विकार।।
वचन की चरचा शुभ चोवो, चरचौ बारंबार।
राग गुलाल अबी त्याग भरि, रंग रंगो सुविचार।।3।।
अनहद नाद अलापो जाँमैं, सोहे सुर झंकार।
रीझ मगनता दान त्याग कर, धर्म पाल सुनि यार।।4।।

हे चतुर खिलाड़ियो, इस प्रकार होली खेलो। धर्मस्थान पर सभी इकट्ठे होकर बैठो। ज्ञान-जल से पूर्ण भरी पिचकारी जिनवाणी है, उसकी वर्षा करो और प्रीतिपूर्वक झेलो, उसी से कर्मविकार घुलेगा। बारम्बार जिनवाणी की चर्चा करो, रागरूपी गुलाल त्याग कर सुविचारों (जिनवचनों) में रंग जाओ। अनहद नाद करो, सोहं का स्वर भरो, आसक्ति छोड़ो, दान-त्याग करो और धर्म का पालन करो।

(29)

अध्यातम फाग

अध्यातम बिन क्यों पाइये हो, परमपुरुष को रूप।
 अघट अंग घट मिल रह्यो हो, महिमा अगम अनूप॥1॥
 विषम विरष पूरो भयो हो, आयो सहज बसंत।
 प्रगटी सुरुचि सुगंधिता हो, मन मधुकर मयमंत॥2॥
 सुमति कोकिला गह गही हो, बही अपूरब वाड।
 भरम कुहर बादर फटे हो, घट जाडो जड़ ताड॥3॥
 मायारजनी लघु भई हो, समरस दिवशशिजीत।
 मोहपंक की थिति घटी हो, संशय शिशिर व्यतीत॥4॥
 शुभ दल पल्लव लहलहे हो, होहिं अशुभ पतझार।
 मलिन विषय रति मालती हो, विरति वेलि विस्तार॥5॥
 शशि विवेक निर्मल भयो हो, थिरता अमिय झकोर।
 फैली शक्ति सुचन्द्रिका हो, प्रमुदित नैन चकोर॥6॥
 सुरति अग्निज्वाला जगी हो, समकित भानु अमन्द।
 हृदयकमल विकसित भयो हो, प्रगट सुजश मकरन्द॥7॥
 दिढ कषाय हिमगिर गले हो, नदी निज्जरा जोर।
 धार धारणा बह चली हो, शिवसागर मुख ओर॥8॥
 वितथ बात प्रभुता मिटी हो, जग्यो जथारथ काज।
 जंगलभूमि सुहावनी हो, नृप वसन्त के राज॥9॥
 भवपरणति चाचरि भई हो, अष्टकर्म बनजाल।
 अलख अमूरति आतमा हो, खेलै धर्म धमाल॥10॥
 नयपंकति चाचरि मिलि हो, ज्ञान ध्यान डफ ताल।
 पिचकारी पद साधना हो, संवर भाव गुलाल॥11॥
 राग विराग अलापिये हो, भावभगति शुभ तान।
 रीझ परम रसलीनता हो, दीजे दश बिधि दान॥12॥
 दया मिठाई रसभरी हो, तप मेवा परधान।
 शील सलिल अति सीयलो हो, संजम नागर पान॥13॥

गुंपति अंग परगासिये हो, यह निलज्जता रीति।
 अकथ कथा मुख भाखिये हो, यह गारी निरनीति॥14॥
 उद्धत गुण रसिया मिले हो, अमल विमल रसप्रेम।
 सुरत तरंग मैं छकि रहे हो, मनसा वाचा नेम॥15॥
 परम ज्योति परगट भई हो, लगी होलिका आग।
 आठ काठ सब जरि बुझे हो, गई तताई भाग॥16॥
 प्रकृति पचासी लगि रही हो, भस्म लेख है सोय।
 न्हाय धोय उज्ज्वल भये हो, फिर तहँ खेल न कोय॥17॥
 सहज शक्ति गुण खेलिए हो, चेत 'बनारसिदास'।
 सगे सखा ऐसे कहै हो, मिटै मोहदधि फास॥18॥

भावार्थ - अध्यात्म की प्राप्ति होने पर बुरा समय बीत जाता है और सहज वसंत आ जाता है। उस समय अध्यात्म की सुगन्ध फैल जाती है, मनरूपी भौंरा मस्त हो जाता है, सुमतिरूपी कोयल कूकने लगती है, भ्रमरूपी कोहरा व बादल फट जाते हैं, जड़ता रूपी सर्दी समाप्त हो जाती है। प्राणरूपी रात्रि छोटी हो जाती है, शुभ भाव के नये पत्ते खिलने लगते हैं, अशुभभाव के पत्ते झड़ने लगते हैं, विषयानुराग की मालती मलिन हो जाती है और व्रत रूपी बेल बढ़ने लगती है। तथा आत्मा धर्म की होली खेलने लगता है। नयों की चांचर, ज्ञानध्यान के डफ-ताल, साधना की पिचकारी, संवरभावों की गुलाल, विराग की राग, भक्तिभाव की तान, परम लीनता रस की रीझ, दसविध दान, दया की सरस मिठाई, तप का मूल्यवान मेवा, शील का शीतल जल, संयम के नागर पान इत्यादि सामग्री के द्वारा यह आत्मा अपनी परमज्योति की आग प्रकट करके अष्ट कर्म की लकड़ी को जला देता है और स्वयं पूर्ण उज्ज्वल हो जाता है।

कविवर बनारसीदास कहते हैं कि हमें अपनी आत्मिक शक्ति का ऐसा सहज खेल खेलना चाहिए कि मोह के सर्व बन्धन नष्ट हो जाएं।

(30)

भेदविज्ञान है होली, तत्त्व का ज्ञान है होली।
निजातम ज्ञान है होली, निजातम ध्यान है होली॥ 1॥
धर्म का ज्ञान है होली, धर्म का ध्यान है होली।
सिद्ध गुणगान है होली, सिद्ध सम ध्यान है होली॥ 2॥
निजातम साधना होली, आत्म आराधना होली।
ज्ञानिजन खेलें यह होली, सकल मुनि गण खेलें होली॥ 3॥
नहीं है और कोड़ होली, समझ लो कान को खोलि।
भेदविज्ञान तो भूले, मनाई राग रंग होली॥ 4॥
इसी से मिली दुःख झोली, दिखी ना सत्यसुख रोली।
समझ लो अपना घट खोलि, खाओ अब तत्त्वज्ञान गोली॥ 5॥
ज्ञान की केसर अब घोलि, भरो आनन्द की झोली।
मिलो फिर सिद्धों की टोली, मनाओ अब ऐसी होली॥ 6॥

इसका अर्थ सरल है। भावार्थ यह है कि भेदविज्ञान करके आत्मानुभूति करना ही सच्ची होली है और इसे सम्यग्दृष्टि जीव से लेकर मुनिराज, जिनराज और सिद्ध भगवान तक सभी ज्ञानी जीव मनाते हैं। हमें भी राग-रंग की होली से ऊपर उठकर ऐसी ही आध्यात्मिक होली मनानी चाहिए।